के. पी. अनमोल

राजस्थान

हिंदी की महिला ग़ज़लकारों के महिला दृष्टिकोण के शेर

हिंदी साहित्य में समय-समय पर विभिन्न विमर्श चलते आये हैं। पिछले कुछ वर्षों में महिला विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श आदि बहुचर्चित रहे हैं। ऐसा नहीं है कि इन विमर्शों से संबंधित साहित्य लेखन उसी समूह विशेष के लेखकों ही ने किया है लेकिन यह भी सत्य है कि विमर्श विशेष से संबंधित हुआ लेखन यदि उस विमर्श से जुड़े रचनाकार द्वारा ही हुआ है तो उसका अलग ही प्रभाव पड़ा है। उदाहरण के लिए दलित विमर्श यूँ तो प्रेमचंद के ज़माने से ही हिंदी साहित्य में अभिव्यक्त होने लगा था लेकिन ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिषराय अथवा जयप्रकाश कर्दम द्वारा रचा गया साहित्य दलित विमर्श से संबंधित लेखन में एक अलग ही आयाम जोड़ता है।

यह बात सच है कि एक लेखक धर्म, जाति, आयु अथवा क्षेत्र आदि सीमाओं से परे होता है। उसके पास ऐसी दैवीय शक्ति होती है कि वह हर एक वर्ग की संवेदनाओं को बहुत बारीकी से महसूस कर सकता है तथा उसको स्वर दे सकता है लेकिन यदि एक लेखक अपने ख़ुद के जीवन-अनुभवों को अभिव्यक्ति देगा तो निश्चित ही वह उन्हें अधिक मजबूती के साथ, अधिक प्रबलता के साथ प्रस्तुत करेगा। इस तथ्य में भी कोई संदेह नहीं होना चाहिए। इन दोनों पक्षों को समझने के लिए हम एक ही विषय पर इस प्रकार के दो अलग -अलग लेखकों की रचनाओं का अध्ययन कर देख सकते हैं।

ग़ज़ल के लम्बे इतिहास में महिला रचनाकारों की भी ख़ूब उपस्थिति रही है। उर्दू ग़ज़ल में महिला ग़ज़लकारों के ऐसे कितने ही नाम रहे हैं, जिन्होंने ग़ज़ल लेखन में उल्लेखनीय काम किया है। इधर हिंदी में महिला ग़ज़लकार कम ही रही हैं लेकिन कई उल्लेखनीय नाम सामने आ चुके हैं। इन दिनों हिंदी की ग़ज़ल में भी ख़ूब महिला ग़ज़लकार सक्रिय हैं। ग़ज़ल में महिला रचनाकारों के लेखन पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाए तो हम पाते हैं कि इक्कीसवीं सदी से पहले तक महिला ग़ज़लकार भी पुरुष ग़ज़लकारों ही के दृष्टिकोण से लेखन करती रही हैं। उनके लेखन में एक महिला का नज़रिया तो क्या क्रियाएँ भी पुरुषों वाली प्रयोग हुई हैं। उदाहरणार्थ महिलाएँ भी 'देख रही हूँ' की बजाय 'देख रहा हूँ' लिखती रही हैं। और बाक़ायदा महिला ग़ज़लकारों

को अपने स्त्रीलिंग से संबंधित क्रियाएँ रखने पर टोका जाता रहा है। इसीलिए आप देखेंगे कि इस सदी से पहले तक के हुए महिला ग़ज़ल लेखन में महिलाओं संबंधित दृष्टिकोण के शेर न के बराबर मिलेंगे।

इस संबंध में मैंने कुछ वर्ष पूर्व '101 महिला ग़ज़लकार' संकलन पर काम करते हुए ग़ौर किया था, जब रचनाकारों के चयन के लिए सैंकड़ों महिला ग़ज़लकारों की ग़ज़लों से गुज़रने का मौक़ा मिला था। इस बात का ज़िक्र मैंने उस पुस्तक की भूमिका में भी किया है। थोड़ा विस्तार में जाकर ग़ौर करें तो हम पाते हैं कि महिला और पुरुष के जीवन से प्राप्त अनुभव बिलकुल भिन्न होते हैं। दोनों के समक्ष लोग अलग-अलग तरह से पेश आते हैं। दोनों के लिए हर क्षेत्र में लोगों के मानक अलग होते हैं। यानी महिला अपने जीवन में जो अनुभव प्राप्त करती है, एक पुरुष उनका अनुभव कभी नहीं कर पाता। ठीक इसका उल्टा भी है। यानी दोनों के जीवन में ऐसा बहुत कुछ है, जो दोनों का नितांत निजी है। यह निजी अनुभव पूरी आबादी में से आधी आबादी के जीवन से जुड़ा हुआ है, भोगा हुआ है फिर इसे अभिव्यक्त क्यूँ नहीं होना चाहिए! अगर हम हिंदी की दूसरी विधाओं की रचनाएँ उठाकर देखें तो हम पाते हैं कि वहाँ ऐसी अभिव्यक्ति हुई है और बहुत पसंद भी की गयी है, सार्थक भी रही है। उदाहरण के लिए हम हिंदी की कहानियों में मन्नू भण्डारी, मालती जोशी, मैत्रेयी पुष्पा जैसी रचनाकारों की कहानियों में महिला जीवन और दृष्टिकोण का चित्रण देख सकते हैं।

इस संदर्भ को ध्यान में रखते हुए मैंने हिंदी की वर्तमान महिला ग़ज़लकारों के लेखन पर कुछ अध्ययन किया तो पाया कि अब ये रचनाकार महिला दृष्टिकोण से संबंधित पक्ष भी अपनी ग़ज़लों के शेरों में अभिव्यक्त करने लगी हैं। कुछ वर्ष पहले ग़ज़ल का एक संग्रह पढ़ते हुए एक शेर मेरे सामने पड़ा और मैं बहुत देर तक उसी पर अटका रह गया। मेरा मानना है कि शेर में जो भाव अभिव्यक्त हुआ है, वह एक पुरुष रचनाकार अनुभव कर ही नहीं सकता। शेर में एक कहानी है, जीवन का एक छोटा-सा टुकड़ा है। एक माँ है, एक बेटी है। और अपनी ज़रा-सी बेटी की हरकतों पर मुग्ध होती माँ का ऑब्जेर्वेशन है।

बड़ी होकर न जाने कितने ये क़िस्से सुनाएगी

मेरी नवजात बच्ची तो अभी से बात करती है

यह है दुनिया को, जीवन को देखने का महिला का नज़रिया। हिंदी की चर्चित ग़ज़लकार **डॉ० भावना** का है यह शेर। डॉ० भावना के ग़ज़ल लेखन में अनेक जगह हम महिला दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति पाते हैं। इनकी ग़ज़लों से महिला दृष्टिकोण के कुछ शेर द्रष्टव्य

हैं-बैठी हूँ जबसे इस बस में
आँखें यादों का गुच्छा हैं

गयी हूँ माँ पे सब कहने लगे हैं
वही बातें पुरानी कर रही हूँ

एक दुपहरी लंच की ख़ातिर
घर आओगे! मन कहता है

तुम्हें हरियालियों से प्रेम है तो
लो अपना रंग धानी कर रही हूँ

यहाँ पीहर की ओर लौटती एक युवती के मनोभावों का चित्रण है। परिपक्वता की ओर जाती एक बेटी की अनुभूति है, जब वह मानसिक तथा शारीरिक रूप से ख़ुद को अपनी माँ के बहुत पास अनुभव कर रही है। और अगले दो शेरों में गाढ़े ग्राहस्थ प्रेम का वर्णन है, जहाँ प्रियतम की प्रतीक्षा है और उसके प्रति समर्पण भी। यहाँ परम्परागत ग़ज़ल के प्रतिमान भी बदले हुए हैं।

एक बच्ची, एक लड़की, एक युवती, एक प्रौढ़ा और एक उम्रदराज़ महिला तक के उम्र के सफ़र में एक महिला कितने ही अनुभव अपनी झोली में समेटती जाती है। एक पुरुष की ही तरह लेकिन उससे कुछ अलग 'वे' में। चाहे गुड्डे-गुड़ियों के खेल में बनी दुल्हन हो, चाहे स्कूल अथवा बाज़ार जाने के लिए घर से अकेली निकली बच्ची हो, चाहे प्रेम में पड़ी और अपनी ही दुनिया में खोयी एक अल्हड़ युवती हो, चाहे अपनी पढ़ाई और कैरियर की चिंताओं में खोयी एक नवयुवती हो, चाहे घर सँभालती एक सुघड़ गृहिणी हो, चाहे अपने बच्चों में जीती एक माँ हो, चाहे भरे-पूरे घर को समेटे हुए एक मालकिन हो या बच्चों के आसरे पल रही एक वृद्धा हो। जीवन के हर पड़ाव पर वह पुरुष से एक बिलकुल अलग नज़रिए से दुनिया को देखती है और दुनिया से अनुभव प्राप्त करती है।

जीवन के ये तमाम तरह के अनुभव अब जब ग़ज़लों के माध्यम से शेरों में ढलकर आते हैं, तो दुनिया को समझने की एक अलग ही खिड़की खोलते हैं। इस प्रकार की अभिव्यक्ति न केवल महिला पाठकों के लिए मार्गदर्शक हो सकती है बल्कि पुरुष पाठक भी इन शेरों की गहराई तक पहुँचकर एक अलग तरह का अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। साहित्य जीवन का ही प्रतिबिंब माना जाता रहा है फिर जीवन के किसी विशेष पहलु को अभिव्यक्त होने में कैसी झिझक!

एक लड़की शादी के तुरंत बाद अपने गाँव, घर, परिवार और सखी-सहेलियों को बिसारकर एक नई दुनिया में रम जाती है। पहले पति, नया परिवार फिर संतानें, उनकी परवरिश, पढ़ाई-लिखाई, उनकी शादी के सपने, अवसरों की धूमधाम, फिर बहुएँ और उसके बाद भी बहुत कुछ लेकिन इतनी व्यस्त और उलझी हुई वह लड़की अपने जीवन के किसी भी पड़ाव पर वह घर, जहाँ जन्मी-पली, वे रिश्तेदार जिनसे उसका जुड़ाव रहा, वे गलियाँ, वे सखियाँ जिनके साथ खेली -कूदी उन्हें कभी भी नहीं भूल पायी बल्कि हर समय वह अपने पीहर की अनमोल यादें मन में समेटे रही। पीहर को तो अपने अंतिम समय तक एक महिला अपने से अलग नहीं कर पाती। भले ही समय उन यादों को एक मलबे में तब्दील कर दे लेकिन वह उन्हें उससे अलग बिलकुल नहीं कर सकता। **डॉ० कविता विकास** कहती हैं-

दब रहीं वक़्त के मलबे में हैं यादें सारी
पर न भूला है मेरे ज़ेहन से पीहर मेरा

और वैसे भी वह घर, वह परिवार, वह माहौल जिसका वो वर्षों तक एक अभिन्न हिस्सा रही हो, उसे भूलना तो क्या; छोड़ना भी कौन चाहेगा! बड़ी अजीब तरह की व्यवस्था है यह। एक महिला किसी भी क़ीमत पर अपने घर से जुदा नहीं होना चाहती और वह तड़पकर कहती भी है कि

न मैं हक़ ही चाहूँ न हिस्सा कभी
मगर घर से बाबा विदाई न दे

लेकिन **डॉ० कविता विकास** के इस शेर का आग्रह हमेशा ठुकरा दिया जाता है। कोई बाबा अपनी बेटी की नहीं सुनता। वह उसे एक परायी दुनिया को सौंप ही देता है। लेकिन वह भी क्या करे! यही तो दुनिया की धारा है।

एक भरे-पूरे घर की जवाबदेही और ऊपर से समाज के तरह-तरह के बंधन, एक महिला के जीवन को बड़ा चुनौतीपूर्ण बना के रखते हैं। एक तरफ घर के छोटे से बड़े हर प्राणी की ज़रूरतों को पूरा करने की ज़िम्मेदारी, घर को सजा-सँवार कर रखने की माँग, घर के बाहर के सौ काम दूसरी तरफ ये न करो, वो न पहनो, यूँ न उठो-बैठो जैसी हज़ार पाबंदियाँ यानी महिला जीवन मुश्किलों से भरा एक 'पिंजरा' बन बैठता है। कभी-कभी यह पिंजरा दम घोंटने वाला भी हो जाता है, जब घर-परिवार में उसे समझने वाला कोई न हो।

हज़ार सपने सजाकर नए घर, नए साथी, नई दुनिया में आयी एक अल्हड़ लड़की ऐसी स्थिति में कैसे अपने आपको 'एडजस्ट' करती होगी और कैसे अपने 'आप' को बचाए रखती होगी, हम पुरुष इसकी कल्पना भर भी नहीं कर सकते। कैसे वो ज़रा-ज़रा-सी बातों में अपने मन को उलझाकर अपना अस्तित्व बचाए रखने का प्रयास करती होगी, वही जान सकती है। मुझे उदयपुर की ग़ज़लकार **सुमन आशीष** का एक शेर याद आता है, जो इस स्थिति को शब्दशः हमारे समक्ष रखता है-

मेरे घर की दीवारों में कोई रोशनदान न था
चंद दरारों से ही थोड़ी धूप चुराकर लौट आई

यह 'धूप चुराने का जतन' दरअसल अपनी साँसें बचाए रखने का जतन है।

डॉ० कविता विकास एक बार फिर महिला जीवन की भारी व्यस्तता पर शेर कह उठती हैं-

ज़िंदगी है हम औरतों की क्या
काम बस काम ही है क़िस्मत में

एक कहावत जो हम सबने इंटनेट पर इन दिनों ख़ूब देखी-पढ़ी है कि 'एक महिला काम से लौटकर काम पर ही लौटती है'। यह शेर उसी कहावत का अनुवाद जान पड़ता है। इन मुश्किलों का गट्ठर और भारी हो जाता है, जब महिला नौकरीपेशा हो। ऐसे में उसका जीवन सामान्य से कई गुणा मुश्किल हो जाता होगा।

पहले **सीमा विजयवर्गीय** और फिर **नेहा कटारा पाण्डेय** इस स्थिति को अपने शेरों में यूँ अभिव्यक्ति देती हैं-

घर-दफ़्तर, चौका-चूल्हा और पढ़ना-लिखना
इन सबके ही बीच मैं ख़ुशियाँ ढूँढ रही हूँ

———————

मन में तो शौक-ए-सुख़न की बात है
उसपे घर के संग दफ़्तर और मैं

यहाँ 'और मैं' यही बताता है कि इन स्थितियों को केवल वह महिला ही समझ सकती है और वही इनसे पार पाने के संघर्ष को जानती है। लेकिन हम यानी 'पुरुषों की आधी दुनिया' यह तो जान ही सकती है कि इन सब जद्दोजहद में महिला अपना क्या खो रही है! अक्सर वो बीमारी की हालत में कुछ समय सुस्ताने के लिए नहीं निकाल पाती, अपने लिए दो घड़ी 'मी टाइम' की व्यवस्था नहीं कर पाती, कभी हमारी तरह

बालकनी में बैठकर चाय-पकौड़े का ऑर्डर नहीं दे सकती, कभी देर तक सोकर अलसाए हुए उठने का सपना नहीं देख सकती। यह सब दो-चार बातें हैं जबकि हम जानते हैं कि कितना कुछ है, जो उससे छूट जाता है। **अंजू केशव** का यह शेर देखिए, जो शायद मेरी बात को पूरा कर सके-

लदा है घर की दिनचर्या का इक बेताल कंधे पर
कि अक्सर ही सुहानी भोर मुझसे छूट जाती है

इन तमाम स्थितियों में कभी एक महिला का मन अपने जीवन को अपनी तरह जीने का भी करता ही होगा! सारे बंधन, पाबंदियाँ एक तरफ रख उसका भी मन अपनी तरह कुछ करने का करता होगा! लेकिन हर कोई जानता है कि इस तरह के ख़्वाब देखना उसके लिए नामुमकिन जैसा ही है। वरिष्ठ ग़ज़लकार **ममता किरण** का एक शेर है-

ये घेरे, ये रस्मो-रिवाजों के बंधन
मैं बढ़कर इन्हें तोड़ना चाहती हूँ

पुरुषों की दुनिया ने महिला को बहुत चालाकी से बेवकूफ़ बनाकर उसकी आज़ादी और अधिकार उससे हड़प लिए। उसे घर की इज़्ज़त, लक्ष्मी और ऐसी कितनी ही पदवियाँ देकर उसके सहज जीवन को एक विशेष जीवन-शैली में बाँध दिया, जिससे वह चाहकर भी नहीं निकल पाती। बल्कि अधिकतर महिलाएँ तो इन्हीं बरगलावों में उलझकर अपनी ही आज़ादी का विरोध करती रहती हैं। **सुमन आशीष** ने अपने इस शेर में महिला जीवन की छटपटाहट यूँ बयान की है-

मुझको देवी बना दिया तुमने
अब शरारत भी की नहीं जाती

घर की इज़्ज़त या वह देवी अपने जीवन को अपनी तरह जीना तो दूर, अपने जीवन से जुड़े फ़ैसले भी ख़ुद नहीं ले सकती। उसके हर छोटे-बड़े निर्णय पर उसके 'परमेश्वर' या परिवार की रज़ामंदी की मोहर सख़्त ज़रूरी होती है। अपने वंश के संचालन के लिए एक उत्तराधिकारी की चाहत के बीच एक 'देवी' को दुनिया में लाने न लाने की पशोपेश में वही माँ, जिसे उस संतान को जन्म देना है या जिसने उसे अपने बदन की धरती पर रोपा व पाला-पोसा है, वही कोई निर्णय का अधिकार नहीं रखती! निर्णय घर के बड़े अथवा परमेश्वर का ही मान्य होता है! **ममता किरण** हमारे समाज की इस संकुचित मानसिकता की स्थिति को अपने एक शेर में इस तरह बयान करती हैं-

एक निर्णय भी नहीं हाथ में मेरे बेटी
कोख मेरी है मगर कैसे बचा लूँ तुमको

आज़मगढ़ की ग़ज़लकार **आशा सिंह** अपने एक शेर में महिला जीवन से संबंधित होने वाले बदलावों का पर्दाफाश करते हुए असलियत हमारे सामने रखती हैं कि उम्र के सभी पड़ावों में जितने भी पुरुषों के संरक्षण में एक महिला रहती है, वे सभी उस पर एक ही तरह की पाबंदियाँ रखते हैं यानी पिता, भाई, पति, बेटे महिलाओं को लेकर सबकी ही सोच एक ही जैसी रहती है और हर कोई यही चाहता है कि वह उसके अनुसार जिए, अपने अनुसार नहीं। और उसे मिलने वाले बदलाव उन्हीं के अनुसार होते हैं यानी शर्तों पर।

उम्र भर बदले कई पिंजरे हमारे
और हर बदलाव शर्तों पर मिला है

पिता का घर, भाई का घर, पति का घर, बेटे का घर इन समस्त घरों का सफ़र पूरा कर अंत में यही हासिल रहता है कि कोई घर उसका अपना नहीं था। उसने अपने जीवनभर में अपने लिए क्या किया, यह सोचकर वह ठगी-सी खड़ी रह जाती है और इसके सिवा उसके पास चारा ही क्या होगा अंत में। शेर के 'कुछ तुम्हारा नहीं' से **गीता शुक्ला 'गीत'** समस्त महिलाओं को अहसास दिलाना चाहती है कि कितना भी मर-खट लिया जाए, आभार के दो शब्द तुम्हें कभी सुनने को नहीं मिल सकते। यही हमारे समाज की सच्चाई है।

उम्र की साँझ में हम ठगे-से खड़े
'कुछ तुम्हारा नहीं' वो जताते रहे

मुझे राजस्थान की वरिष्ठ साहित्यकार **आशा पाण्डेय ओझा 'आशा'** की याद आती हैं, जिनका जीवन ख़ुद एक मिसाल है। जिन्होंने जीवनभर ख़ुद को हर मोर्चे पर मज़बूती से खड़े पाया है। वे अपने जीवन और अपने इस शेर से यह मंत्र देना चाह रही हैं कि एक महिला अपने हिस्से का 'सबकुछ' केवल अपने दम पर ही हासिल कर सकती है, किसी की कृपा से नहीं। एक महिला, जो इस सृष्टि की रचना में सहयोग करती आयी है, जिसने इसे सँवारा-सजाया है, वह अपने अधिकारों के लिए किसी का मुँह क्यूँ देखे! बस वह अपने आपके लिए सजग हो जाए, उसके राह की सभी मुश्किलें उसके सामने ढेर हो जाएँगी। आशा पाण्डेय जी ठीक ही कहती हैं-

पर्वत से टकराई है तू
तुझको यह इक पत्थर क्या है!

ग़ज़लकार **ओमलता पाण्डेय** भी उपरोक्त चर्चा का समर्थन करती हुई हमारे समय की हर एक महिला से अपने लिए ख़ुद समर्थ हो जाने के लिए आह्वान करती हुई कहती हैं-

ख़ुद अहिल्या आगे बढ़कर मुक्त हो हर श्राप से
क्यूँ किसी की बाट जोहे वो मसीहा मानकर

हिंदी की महिला ग़ज़लकारों के महिला दृष्टिकोण के ये समस्त शेर कुछ आश्वस्तिकारी दिखाई देते हैं कि अब ग़ज़ल में भी महिला जीवन से जुड़े पहलु अपनी उपस्थिति दर्ज करवाते रहेंगे और महिला अनुभवों की यह उपस्थिति एक नई दुनिया को समझने में हर वर्ग के लिए सहायक सिद्ध होगी। महिला ग़ज़लकारों से भी आग्रह रहेगा कि वे अपने इस तरह के अनुभवों को अपने तक ही सीमित न रखकर अपने सृजन के माध्यम से अभिव्यक्त भी करती रहें ताकि साहित्य समाज का वह आईना बन सके, जिसमें उसका पूरा अक्स प्रतिबिंबित हो सके।

धरोहर

फ़िराक़ गोरखपुरी

शाम भी थी धुआँ धुआँ हुस्न भी था उदास उदास
दिल को कई कहानियाँ याद सी आ के रह गईं